

(तिरुपुर से आने वाली मजदूरों के आत्महत्याओं की रिपोर्टों को देखते हुए हमने 'कमिटी ऑफ कन्सर्नर्स सिटीजन-स्टूडेंट्स एण्ड यूथ' का गठन किया जिसकी एक फैक्ट फाइण्डिंग टीम पिछले दिनों तिरुपुर गई थी। हम यहां उसके अवलोकनों को पेश कर रहे हैं।)
(गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली में 22 मई, 2011 को आयोजित मीटिंग में पेश रिपोर्ट)

तिरुपुर से मजदूरों की आत्महत्याओं की जो रपटें आ रही थीं वे बिल्कुल बेजा जान पड़ती थीं। यह तो तमिलनाडु का एक गरमबाजारीवाला शहर है जो कताई, बुनाई व सिलाई के मार्फत खुशहाली के राजपथ पर सरपट दौड़ रहा है और इसी के बीच से आत्महत्या की कहानियां सामने आ रही हैं। यह सचमुच एक भूमंडलीकृत काम की जगह है जो वालमार्ट, सी एण्ड ए, डीज़ल, फिला, रीबौक आदि जैसे तमाम बड़े अन्तर्राष्ट्रीय ब्रांडों को कपड़ों की आपूर्ति करता है। यह वैसी जगह नहीं है जहां कपास की फसल व बिक्री मारी गई थीं और निरुपाय होकर कपास पैदा करने वाले किसानों ने आत्महत्या कर ली थी, जैसा कि विदर्भ में। कपास तो यहां के लिए सोने की खान है। तिरुपुर की तकदीर चमकी हुई है और यहां से 12,000 करोड़ या इससे ज्यादा रुपयों का निर्यात होता है। यह एक वैसा शहर है जहां उद्यमिता का क्या मायने होता है उससे हमारा रु-ब-रु होता है। 1970 के दशक में जो एक छोटा होजरी, मुख्यतः अंतःवस्त्र, बनाने वाला केन्द्र था उसने भूमंडलीकृत होते दशकों में कपड़ों का एक अग्रणी निर्यातक होने का रास्ता पकड़ लिया और विकास की गति यहां अत्यंत तीव्र हो गई। ऐसी जगह पर आत्महत्या विडम्बनापूर्ण परिघटना प्रतीत होती है।

खबरें सचमुच तकलीफदेह और बेचैन करनेवाली थीं और हमलोगों ने सोचा कि तिरुपुर चलकर खोजखबर ली जाए। वहां जाकर हमने मजदूरों, सीटू व एटक के लीडरों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं से मुलाकात की। हमलोगों ने पत्रिकाओं व अखबारों की रिपोर्टों को पढ़ा। हमलोगों ने विभिन्न सरकारी महकमों तथा गैर सरकारी संगठनों की रिपोर्टों को भी पढ़ा और हमने अपनी रिपोर्ट में उन्हें जगह दी है। हमारे द्वारा बटोरी गई बातों से तिरुपुर की ऐसी दुःखद दास्तान सामने आती है।

पिछले दो सालों में 800 मजदूरों ने आत्महत्या की है तथा तिरुपुर नामक नए जिले में हर रोज आत्महत्या की 20 कोशिशें होती हैं! तिरुपुर की कपड़ा इकाइयों के मजदूर आत्महत्या कर रहे हैं और इस तरह की एक व्यापक परिघटना उन हालातों का ही नतीजा है जिसके तहत तिरुपुर के मजदूर वर्ग को काम करना और जीवनयापन करना पड़ता है।

श्रम की नई प्रथाएं -

तिरुपुर के उद्यमी वास्तव में उद्यमशील हैं और यह कोई अचरज की बात नहीं है कि उन्होंने श्रम के नए-नए रिवाजों का ईजाद किया है। उनको पता है कि बेशी मूल्य का ज्यादा से ज्यादा दोहन कैसे किया जाता है और वे मजदूरों को कब्जे में रखने व उनका शोषण करने के लिए सुमंगली तथा कैंप कूली जैसी व्यवस्थाओं को गढ़ा है।

सुमंगली प्रथा विवाह योग्य उम्र की लड़कियों के लिए है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जो तमिल समाज में प्रभावकारी तरीके से वैवाहिक रीतियों को पैदा करती है और ऐसा प्रतीत होता है जैसे इसने जवान लड़कियों के माता-पिता के भय व चिन्ता का निवारण किया है। ये लड़कियां आम तौर पर दक्षिण तमिलनाडु के गांवों से आती हैं। लिंग भेदभाव उद्यमियों को शोषण की खातिर कारगर तरीके से चारा मुहैया करता है। नवयुवतियों को बतौर मजदूर ठेका पर तीन साल के लिए काम दिया जाता है। ठेका अवधि की समाप्ति पर उन्हें 30,000 रु० से लेकर 60,000 रु० के बीच की कोई एकमुश्त रकम दी जाती है जो मालिकों के अनुसार इनकी शादी व देहेज के लिए होती है। रिपोर्टों के मुताबिक बीमारी या छुट्टी की वजह से अगर सेवा अवधि में कोई व्यवधान होता है तो इस रकम को भी देने से इनकार कर दिया जाता है। इन लड़कियों के लिए रहने और खाने का इंतजाम रहता है। वे अपने हॉस्टलों में ही कैद रहती हैं और परिवार के केवल उन सदस्यों को ही उनसे मिलने की इजाजत होती है जिनके फोटो फ़ैक्टरी प्रबंधकों को दिए गए हैं। इस कैद का उनके मानस पर हानिकारक असर पड़ता है।

ऊपर से उन्हें घटिया किस्म का खाना मिलता है और उनके रहने की परिस्थितियां अस्वास्थ्यकर व बुरी होती हैं। उन्हें कार्यावधि से ज्यादा समय तक का काम करना पड़ता है और वह भी बिना किसी भुगतान के। बुनाई और वस्त्र उद्योग में श्वास से जुड़ी समस्या, टी०बी०, पेटदर्द तथा चक्कर जैसे बहुत सारे पेशा संबंधी जोखिम हैं। रहने की हानिकारक परिस्थितियों के साथ मिलकर ये इनकी स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को गंभीर बना देते हैं। ऊपर से इनका यौनशोषण भी होता है। यहां श्रम कानूनों की धज्जी उड़ाई जाती है। सुमंगली के रूप में काम करने वाली लड़कियों को 'प्रशिक्षार्थी' या 'प्रशिक्षु' के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। इस तरह अधिकांश श्रम कानून इन पर लागू ही नहीं होते हैं और ऊपर से ये नियमित मजदूरों की मजदूरी दरों के हकदार नहीं होते हैं। ये फ़ैक्टरी प्रबंधन की दया के पात्र बने रहते हैं। महिला मजदूरों को मजदूरों के रूप में तथा महिला के रूप में दोहरे शोषण को भोगना पड़ता है। इस दमनकारी सामाजिक व्यवस्था को विभिन्न रिपोर्टों में आरोपित किया गया है तथा न्यायालयों ने भी इस व्यवस्था को गैरकानूनी बताते हुए इसकी निन्दा की है। ट्रेड यूनियनों के द्वारा इस प्रथा के खिलाफ चेन्नई उच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की गई थी, न्यायालय ने यह अवलोकन किया "हमलोग संतुष्ट हैं कि "कैंप कूली पद्धति" जो "थिरुमंगलम थिरुमान थित्तम" नाम से भी जानी जाती है और 'सुमंगली विवाह योजना' अपने आप में गैरकानूनी है तथा यह बंधुआ मजदूर के बराबर है तथा अधिकारी इस पद्धति को

खत्म करने तथा “कैंप कूली पद्धति” के तहत काम कर रही महिला मजदूरों की सेवा को नियमित करने के लिए कदम उठाने तथा उन्हें पूरे देश के कानून के हिसाब से मजदूरी मिले इसकी गारंटी करने के लिए बाध्य हैं।” इसमें कोई शक नहीं है कि ये सारी बातें बेकार हैं। फिर भी कारखानेदार जोरदार तरीके से इस बात को नकारते हैं कि ‘सुमंगली’ प्रथा का चलन है। इस उद्देश्य से नामकरण में तब्दीली लाई गई है और इसे “नए लोगों के लिए प्रशिक्षण योजना” कहा जाता है।

यह बता दिया जाना चाहिए कि जब हम श्रम की नई प्रथाएं कहते हैं तो हम सचमुच ऐसा कहते हैं और हमारे कहने का अर्थ यह होता है कि यहां के कारखानेदारों ने नियम का उल्लंघन करने, अपने बेसी को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाने तथा सस्ते श्रम के ऐसे शोषण के माध्यम से विश्व बाजार में मुकाबला करने के लिए अनूठी पद्धतियों को ढूँढ़ निकाला है। परिवर्तन की उस प्रक्रिया पर जरा गौर फरमाएं जिसने इस पद्धति को जन्म दिया। सुमंगली प्रथा मुख्यतः कताई मिलों में पाई जाती है। इन मिलों में पहले पुरुष मजदूर काम करते थे। 1970 के दशक में औद्योगिक कार्रवाई के परिणामस्वरूप ये मजदूर तमाम सेवा लाभों के साथ “स्थायी” बन गए। कानून को ठेंगा दिखाने के लिए इन कताई मिलों ने अधिकांशतः नवयुवतियों को काम पर लगाने की ‘सुमंगली’ व्यवस्था को अख्तियार कर लिया।

जरूरत में बदलाव के चलते कैंप कूली व्यवस्था भी आई जो हमें पुनः उच्च श्रमिक-परिवर्तन को रोकने तथा चौबीसों घंटे फैक्टरियों को चलाए रखने के लिए श्रम की सहज आपूर्ति की गारंटी करने के तरीकों की याद दिलाती है।

कैंप कूली के रूप में प्रवासी मजदूर -

श्रम ठेकेदारों द्वारा बिहार, उड़ीसा, राजस्थान तथा झारखंड से सस्ते श्रमिक लाए जाते हैं। ये श्रमिक ठेकेदार अपने लोगों पर नजर रखते हैं तथा प्रबंधन इनके माध्यम से इन मजदूरों के साथ संबंध रखता है। टिफिन के समय गेट पर बहुत से ऐसे मजदूरों से हमारी मुलाकात हुई। मजदूर हमलोगों से मिल रहे थे और अपनी तकलीफों के बारे में बातें कर रहे थे। मुन्ना नाम के एक मजदूर से मुलाकात हुई जो कपड़ा की फैक्ट्री में काम करता है तथा बिहार के सीतामढ़ी से आया है। श्रम ठेकेदार के द्वारा उसे यहां लाया गया था। वह अन्य मजदूरों के साथ फैक्ट्री मालिक द्वारा उपलब्ध डॉरमिट्री (शयनशाला) में रहता है। उसकी यह शिकायत थी कि हॉस्टल शहर से बहुत दूर है। हॉस्टलों में रहने वाले ये प्रवासी मजदूर यूनियनों की पहुंच से बाहर है। यह हमें इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाता है कि केवल तमिलनाडु के मजदूर ही यूनियनों में हैं। तिरुपुर के करीब 4 लाख कार्यबल में से लगभग 10 प्रतिशत ही यूनियन के सदस्य हैं। उसने बताया कि उसके हॉस्टल का कोई भी मजदूर परिवार के साथ नहीं रहता है और वह भी यहां अकेले रहता है। उसे हर रोज 12 घंटे काम करना पड़ता है। सप्ताह में 6 दिन काम करना पड़ता है और रविवार को छुट्टी रहती है। फिर भी अगर मांग को पूरा करना होता है तो उसे बिना किसी अतिरिक्त भुगतान के रविवार को भी काम करना पड़ता है। वह दरजी है और इसका मतलब यह होता है कि उसके काम के लिए सबसे अच्छा पैसा

मिलता है। और उसने बताया कि तब भी उसे सप्ताह में करीब 1710 रु० की ही मजदूरी मिलती है। वह किसी दूसरे लाभ का हकदार नहीं है। वह 21 वर्ष का है तथा अपने काम के अस्थाई प्रकृति से वाकिफ है। उसने बताया कि उसके साथ काम करने वाले किसी भी मजदूर को पी०एफ०, ई०एस०आई०, आदि का लाभ नहीं मिलता है। वे किसी यूनियन के सदस्य नहीं हैं और उनकी तरफ से श्रम ठेकेदार बिचौलिए का काम करते हैं। प्रवासी मजदूर होने के नाते वे कमजोर महसूस करते हैं और आज्ञापरायण बने रहते हैं। कैंप कूली व्यवस्था निश्चित रूप से मालिकों के लिए लाभदायक है क्योंकि यह मजदूरों को उनकी पहुंच में तथा यूनियन मजदूरों की पहुंच से बाहर रखती है। वे व्यापक समाज से पूरे अलगाव का जीवन जीने को मजबूर हैं और पूंजी की बलिवेदी पर उनका जीवन निरन्तर उत्सर्ग होता रहता है।

पूंजी की बलिवेदी पर उत्सर्ग

ऐसी कम मजदूरी, पी०एफ०, स्वास्थ्य, आदि सेवा लाभ के अभाव तथा काम की जबर्दस्त तीव्रता के चलते मजदूरों का जीवन एक बोझ बन गया है। बहुत खराब हालतों में रहना पड़ता है - भीड़भरे कमरे हैं, घटिया दर्जे की साफ-सफाई है, निर्वाह-व्यय ऊंचा है। (तिरुपुर भारत के सबसे महंगे शहरों में से एक है। अनुमान लगाया जाता है कि यह बंगलोर से महंगा है।) ऐसा बोझिल जीवन जीने वाले मजदूर भारी नशे की शरण में चले जाते हैं। वृत्त-चित्र (डाक्यूमेंट्री फिल्म) निर्माता कोवई सथासिवम ने हमें बताया कि शनिवार को तिरुपुर की शराब दुकानों में 5 करोड़ रु० की बिक्री होती है। यह परिस्थिति एक दुश्चक्र का निर्माण करती है जहां अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए मजदूर सूदखोरों से कर्ज लेते हैं। ऐसे घृणित पाशविक जीवन का बोझ ढोने में अक्षम मजदूरों को भयंकर मनोवैज्ञानिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जो आत्महत्याओं की ऊंची दर का कारण बनता है। तमिल मजदूर, जो अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए अपने गांवों से यहां आते हैं, ऊंची ब्याज वाले कर्ज चुकता करते हैं, परिवार के दायित्व का निर्वहन करते हैं, को अहसास होता है कि उन्हें उल्लू बनाया गया है। सूदखोरी (कानदुवती) की उपस्थिति दर्शाती है कि मजदूरों को बहुत खराब मजदूरी मिलती है तथा उनके रहने व काम करने की परिस्थिति घटिया है।

हमलोगों ने घटिया व तनाव से भरी परिस्थितियों को देखा है जिसके अन्तर्गत लड़कियों (सुमंगली) को रहना और काम करना पड़ता है। इसके चलते इनके बीच आत्महत्या की कोशिशों की संख्या बहुत ज्यादा है। तरुणाई का समय खास तौर से मिजाज के बदलाव के प्रति प्रवृत्त होता है तथा तनहाई, अतिश्रम और ऐसे शोषण की मौजूदगी का दुःखदायी नतीजा आत्महत्या की कोशिशें होती हैं। तिरुपुर के वस्त्र उद्योग में कारोबार की हालत पर यह एक गंभीर अभियोगपत्र है। आधिकारिक तौर पर घरेलू झगड़ों या नशाबाजी को आत्महत्या का कारण बताया जा सकता है पर पीस देने वाली गरीबी और अतिश्रम इसकी जड़ में है। वास्तव में जीवन उनके लिए एक बोझ है। देखें -

“इसी बीच अस्पताल में अपने बिछावन पर शिथिल पड़ी मराताकवल्ली बताती है कि अगर उसके पति को आर्थिक समस्याओं

का सामना नहीं करना पड़ता, और अगर पति-पत्नी को साथ बिताने का पर्याप्त समय होता तो उसने आत्महत्या की बात कभी नहीं सोची होती। वह कहती है, “हम दोनों अलग-अलग कंपनियों में सुबह 9 बजे से रात के 10 बजे तक काम करते हैं।” “जब हम अपने भाड़े के कमरे पर पहुंचते हैं तब हम अत्यधिक थके होते हैं। हमलोग गुजारा करने के लिए संघर्ष कर रहे थे। मेरे पति अपनी घटिया स्थिति से छुटकारा के लिए मुझे प्रताड़ित करते थे।” (फ्रंटलाइन, सितम्बर 25 - अक्टूबर 08, 2010)

तिरुपुर की कामयाबी मजदूरों की लूटखसोट पर आधारित है। तिरुपुर के कपड़ा उद्योग के मजदूरों के रहने-सहने व काम करने की परिस्थितियां उनके जीवन को भारी नुकसान पहुंचाती हैं। मजदूरों को न केवल उद्योग से संबंधित पेशागत जोखिम उठाना पड़ता है बल्कि उनसे जो अत्यधिक काम लिया जाता है उसके चलते कम उम्र में ही उनके काम करने की क्षमता का हास हो जाता है। उदाहरण के लिए, दरजीगिरी का काम। इस काम में मजदूरों से अत्यधिक मनोयोग व सावधानी की मांग की जाती है। नतीजा यह होता है कि कम उम्र में ही आदमी अब इस काम को करने लायक नहीं रह जाता है। कहा जाता है कि यहां 40 वर्ष से ज्यादा उम्र के दरजी नहीं मिलते हैं। ये लद्दू जानवर भर रह जाते हैं और पूंजी के लिए खूब चारा का काम करते हैं। अपने घरबार से उखड़कर वे हॉस्टल में गिरते हैं जो उनके लिए कालकोठरी बन जाते हैं जहां कारखानेदारों द्वारा कारगर तरीके से उनके क्रियाकलापों पर निगरानी रखी जाती है। तिरुपुर भारत के दूसरे राज्यों से बड़े पैमाने पर आबादी के उजड़ने का लाभ उठाता है। इससे वहां के कारखानेदारों के लिए सस्ते श्रम के अनवरत स्रोत की गारंटी होती है।

पूंजी की आपत्ति

तिरुपुर के कारखानेदारों द्वारा सस्ते श्रम के उपयोग पर टिप्पणी करते हुए मद्रास इन्सटीच्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज के सहायक प्राध्यापक एम०विजयभास्कर ने कहा, “प्रतियोगी अंतर्राष्ट्रीय बाजार में, खासकर एम०एफ०ए० के बाद वाले युग में, लागत कम करने के उपायों ने बड़ा महत्व हासिल कर लिया है।” [बहु-तंतु समझौता विकासशील देशों से विकसित देशों को होने वाले निर्यात का कोटा निर्धारित करता था। यह 1974 से 2004 के अंत तक लागू था।] “चूंकि कारखानेदार बिजली या परिवहन की लागत को कम करने या विदेशी विनियम के उतार-चढ़ाव को नियंत्रित करने के संदर्भ में ज्यादा कुछ नहीं कर सकते हैं इसलिए वे कैंप कूली व्यवस्था जैसे तरीके अख्तियार कर मजदूरों की मजदूरी के साथ कारीगरी करते हैं। इसके तहत मजदूरों को हॉस्टल और डॉरमेट्री में रखा जाता है तथा उन्हें ट्रेड यूनियनों के साथ हुए वेतन समझौता के दायरे में आने वाले मजदूरों के समान तनखाह नहीं देना पड़ता है।” एम०विजयभास्कर का कहना है। (फ्रंटलाइन, सितम्बर 25 - अक्टूबर 08, 2010)

लागत में सिर्फ एक जगह ही कमी की जा सकती है और वह है श्रम की लागत का क्षेत्र। यह तथ्य मजदूरी प्रथा में अन्तर्निहित अन्याय को सामने लाता है। यह क्रेता यानी पूंजीपति और श्रम-शक्ति

के विक्रेता यानी मजदूर के बीच का न्यायसंगत समझौता नहीं है। यह पूंजी और श्रम का वर्ग संबंध है जो स्वाभाविक रूप से असमानता का संबंध होता है जिसमें श्रम की सारी प्रतिकूल परिस्थितियों से लाभ उठाया जा सकता है। इसलिए केवल सस्ते श्रम की ही बात नहीं है बल्कि श्रम को अत्यन्त दूधर स्थितियों में डाल दिया जाता है, जैसे - कैंप कूली और सुमंगली। यह हमें ‘कॉटेज सिस्टम’ और ‘ट्रक सिस्टम’ की कुख्यातियों की याद दिलाता है जो पूंजीवादी इंग्लैंड में पाए जाते थे और जिन्हें एंगेल्स ने *मजदूर वर्ग की दशा* नामक अपनी पुस्तिका में आरोपित किया है।

अत्यधिक काम, काम की लम्बी अवधि, रहने व काम करने की अस्वास्थ्यकर परिस्थितियां, बंदी जैसा जीवन जिसके चलते आदमी समय से पहले ही काम करने लायक नहीं रह जाता है और आत्महत्याएं होती हैं, दिखाता है कि मार्क्स ने जिसे “बिना मूल्य के जिस्म पर प्रयोग” (*experiments in corpore vili*) कहा था (पूंजी, खंड - 1, पृ० 556, प्रगति प्रकाशन, मास्को) उसे पूंजीपतियों ने आज भी जारी रखा है। मार्क्स ने अपनी महान कृति पूंजी में लिखा है -

“(इसलिये) पूंजी को जब तक समाज मजबूर नहीं कर देता, तब तक वह इसकी कतई कोई परवाह नहीं करती कि मजदूर का स्वास्थ्य कैसा है या वह कितने दिन तक जिन्दा रह पायेगा। जब कुछ लोग मजदूरों के शारीरिक एवं नैतिक पतन का, उनकी असमय मृत्यु का और अत्यधिक काम की यातनाओं का शोर मचाते हैं, तो पूंजी उनको यह जवाब देती है : इन बातों से हमें क्यों सिर-दर्द हो, जब उनसे हमारा मुनाफा बढ़ता है।” (वही, पृ० 306)

पूंजी का यही रुख है और अगर समाज के द्वारा मजबूर नहीं किया जाए तो यह इस बर्बर स्तर की ओर प्रवृत्त होती है। भूमंडलीकरण के रूप में मजदूर वर्ग पर पूंजी के विश्वव्यापी हमले के साथ आज हर देश में खासकर पिछड़े देशों में सबसे निचले स्तर तक चले जाने की होड़ मची है। लेकिन यह भी सही है कि मजदूरों का कचूमर निकालने वाला स्वेटशॉप सं०रा०अमेरिका में भी पाया जाता है और इसके जेल के औद्योगिक कम्प्लेक्स (prison industrial complex) की परिस्थितियां इस तरह की बर्बरता के करीब हैं। तिरुपुर के उद्यमी कानून को ठेंगा दिखाने व श्रम सुरक्षा अधिनियम को उच्छेदित करने के अपने प्रयासों के मामले में सचमुच बड़े खोजी है। तिस पर भी वे संतुष्ट नहीं हैं और श्रम कानूनों के खिलाफ अपनी मुहिम चलाते रहते हैं तथा लचीले श्रम कानूनों की मांग करते हैं -

“कारखानेदार इस तरह के इंतजाम से संतुष्ट नहीं हैं। “उद्योग की मौसमी प्रकृति तथा निर्यात आदेश पर जबर्दस्त निर्भरता के मद्देनजर प्रति कैलेण्डर तिमाही अधिक ओवरटाइम के रूप में काम के घंटों में लचीलेपन” के लिए उन्होंने एक दीर्घकालीन अभियान चला रखा है। भारत में श्रम कानून “बिल्कुल अनमनीय और सख्त” हैं ऐसा दावा करते हुए उन्होंने केन्द्र सरकार से “श्रम कानूनों को उदार बनाने” की मांग की है “क्योंकि वर्तमान नियम-कानून कपड़ा उद्योग के समग्र विकास में बाधा हैं।” सूती वस्त्र उद्योग की आद्योगिक त्रिपक्षीय समिति की 15 जुलाई को नई दिल्ली में हुई बैठक में उन्होंने इस मुद्दे को

जोरदार ढंग से उठाया था।” (फ्रंटलाइन, सितम्बर 25 - अक्टूबर 08, 2010)

यूनियन की पहुंच से दूर हॉस्टलों में मजदूरों को कैद रखने, यूनियन को तोड़ने तथा श्रम कानूनों को उच्छेदित करने के बाद भी संतुष्ट नहीं होने वाले कारखानेदार सरकार पर दबाव बनाते हैं और इसकी गारंटी करते हैं कि कोई भी श्रम कानून श्रम के अति-शोषण के रास्ते का रोड़ा न बने। तिरुपुर का वस्त्र उद्योग इस तरह के गहन श्रम वाले उद्योग को पिछड़े देशों में स्थानान्तरित करने की लहर पर सवार है। तथाकथित लचीले श्रम कानूनों, यानी ऐसे कानून जो विकास के नाम पर कारखानेदारों को अधिकतम आजादी दे, की मांग बिना मूल्य के जिस्मों पर प्रयोगों (*experiments in corpore vili*) के मार्फत मुनाफा कमाने की इनकी भूख को दिखाती है। ‘असंगठित क्षेत्र के उद्यमों से संबंधित राष्ट्रीय आयोग’ (NCEUS) की रिपोर्ट से यह प्रमाणित होता है कि वर्तमान श्रम कानून विकास में बाधक नहीं हैं।

“पाया गया है कि रोजगार में वृद्धि व कमी वस्तुतः मुख्य रूप से बाजार और प्रौद्योगिकी के लिहाज से हुई हैं (पपोला 1994, 2008, कन्नन और रवीन्द्रन 2009)। इस प्रकार ऐसा लगता है कि संगठित उत्पादन में रोजगार वृद्धि में विमंदन या कमी का असली कारण प्रतिबंधक श्रम कानूनों में नहीं अलग-अलग उद्योगों के उत्पादों के बाजार की परिस्थितियों में है।” (भारत में रोजगार की चुनौती - भाग एक)

मंदी के बाद कपड़ा उद्योग में जो विमन्दन आया वह आयोग के इस विचार को अभिपुष्ट करता है कि वृद्धि (फलस्वरूप रोजगार में वृद्धि) मुख्यतः बाजार की परिस्थितियों से होती है। असंगठित क्षेत्र के उद्यमों से संबंधित राष्ट्रीय आयोग ने अपनी रिपोर्ट में रोजगार व उद्योग में वृद्धि के नाम पर ऐसे लचीले श्रम कानूनों की मांग की असलियत को सामने ला दिया है।

मजदूरों की बुरी हालत के आरोप के खिलाफ तिरुपुर निर्यातक संघ के अध्यक्ष अरुमुगम सख्थिवेल का यह कहना है -

“मजदूर खुश हैं और उन्हें अच्छी पगार मिलती है। अगर वे किसी एक कंपनी से खुश नहीं हैं तो वे दूसरी कंपनी में काम करने के लिए स्वतंत्र हैं क्योंकि तिरुपुर में कपड़े की कंपनियों की कमी नहीं है।”

“दूसरे के लिए काम करने की स्वतंत्रता” - इस कथन से हमें कोरी अस्वीकृति, झूठ व बर्खास्तगी की अप्रत्यक्ष धमकी का अनुभव होता है। “दूसरे के लिए काम करने की स्वतंत्रता” वस्तुतः पूंजीवाद का लक्षण है। उजरती गुलाम किसी एक पूंजीपति के साथ नहीं बल्कि पूरे पूंजीपति वर्ग के साथ बंधे होते हैं। मार्क्स ने उजरती मजदूर को ‘परोक्ष बंधुआ मजदूर’ कहा है (पूँजी की पाण्डुलिपि “ग्रूण्ड्रीज” से)। तिरुपुर में रहने और काम करने की स्थिति अगर ऐसी है तो इस स्वतंत्रता का कोई ज्यादा मतलब नहीं होता है। दरअसल मजदूर की आजादी ऐसे हालातों को मंजूर करने या भूखो मरने की आजादी है। सख्थिवेल के शब्दों से वास्तविक जीवन में कोई खास चैन मिलने को नहीं है क्योंकि उनकी गरीबी और कमजोरी उन्हें पूंजी की

लूटमार का शिकार बना देती हैं। उन्नीसवीं सदी की दास प्रथा के वर्णन पर टिप्पणी करते हुए मार्क्स ने कहा है -

“Mutato nomine de te fabula narratur (यह कहानी जनाब ही की है!) गुलामों के व्यापार की जगह पर मजदूरों की मण्डी, केंपटुकी और वर्जीनिया की जगह पर आयरलैण्ड और इंग्लैण्ड, स्कोटलैण्ड तथा वेल्स के खेतिहर डिस्ट्रिक्टों को और अफ्रीका की जगह पर जर्मनी पर रख दीजिए। हम सुन चुके हैं कि ज्यादा काम करने के कारण लन्दन के रोटी बनाने वाले कारीगरों में मृत्यु-संख्या कितनी अधिक बढ़ गई थी। फिर भी लन्दन की श्रम की मण्डी रोटी की दूकानों में मृत्यु का ग्रास बनने के इच्छुक जर्मन तथा अन्य मजदूरों से सदा भरी रहती है।”

आज पूरा भारत प्रवासी मजदूरों से खचाखच भरा है जो पूंजीपतियों के लोभ का शिकार हैं। मजदूरों की अतिउपलब्धता कम समय की सूचना पर मिले आदेशों को पूरा करने की परिस्थिति मुहैया करती है। तिरुपुर पर सेंटर फॉर एडुकेशन एण्ड कम्युनिकेशन (CEC) के एक अध्ययन में बीबी एक्सपोर्टर्स के एक भूतपूर्व प्रबंधक के कथन को उद्धृत किया गया है -

“वे किसी मांग को पूरा करने के लिए बहुत कम समय देते हैं। हमलोगों को अंतिम तिथि तक काम पूरा करने के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ता था। आम तौर पर समय तीन महीने का होता है। अगर हम कोई नमूना भेजते हैं तो वे इसे पसंद करने में समय लगाते हैं, लेकिन एक बार इसे अनुमोदन मिल गया तब आदेश को पूरा करने के लिए वे हमें बहुत कम समय देते हैं। हालांकि हमारे पास सभी सुविधायें और हजारों मजदूर हैं फिर भी हम इसे अपने बूते पूरा नहीं कर सकते हैं। हमें स्वतंत्र इकाइयों को आउटसोर्स करना पड़ता है।”

ये छोटी-छोटी इकाइयां अनियत मजदूर का इस्तेमाल करके आदेश को पूरा करती हैं। मजदूरों की ऐसी आपूर्ति की आवश्यकता को केवल काम की तलाश करते प्रवासी मजदूरों के कारण पूरा किया जा सकता है। ऐसे मजदूरों को बाजार की जरूरतों के मुताबिक अपनी इच्छा से काम पर रखा और काम से बाहर किया जा सकता है।

ये पूंजीपतियों के लिए सस्ते श्रम के बारहमासी स्रोत हैं तथा कठोरतम परिस्थितियों के तहत इनसे काम कराया जाता है। देश का कानून इस पर बहुत सख्त रूख रखता है जैसाकि हमने ऊपर देखा है। देश के कानून के मुताबिक तिरुपुर के अधिकांश मजदूर बंधुआ मजदूर की श्रेणी में आयेंगे। मजदूरों का श्रम बलात् श्रम की श्रेणी में आयेगा।

“एशियाड मजदूरों से संबंधित केस में सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश देते हुए कहा कि बलात् का अर्थ इस तरह से लगाया जाना चाहिए ताकि इसमें न केवल शारीरिक या वैधानिक बल बल्कि सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न बल भी शामिल हो, जो किसी जरूरतमंद आदमी के लिए पसंद या विकल्प नहीं छोड़ता और उसे तब भी श्रम करने या सेवा देने के लिए बाध्य करता है जबकि इसके लिए जो पारिश्रमिक मिलता है वह न्यूनतम मजदूरी से कम है, जो स्पष्टतया संविधान की धारा 23 के अन्तर्गत बंधुआ मजदूर की अवधारणा के तहत आता है।” (‘फेयर वेयर फाउंडेशन’ के तिरुपुर पर

रिपोर्ट से) ऐसा विचार अधिकांश मजदूरों को इसी श्रेणी में रखता है चाहे वे आधुनिक इस्पात मिलों के ठेका मजदूर हों या घरेलू मजदूर। मनरेगा के मामले में सरकार भी यह दावा करते हुए कानून का उल्लंघन करती है कि मजदूरी का विनियमन अधिनियम की धारा 6(1) के द्वारा होता है तथा यह न्यूनतम मजदूरी अधिनियम से मुक्त है! सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय आदेश पारित कर सकते हैं पर कटु सच्चाई दूसरी होती है। एम०एस०एस०आर०एफ० तथा खाद्य सुरक्षा पर विश्व खाद्य कार्यक्रम की आधिकारिक रिपोर्ट ने मामले को इस रूप में रखा है -

“राजनीतिक अर्थशास्त्र के लिहाज से भारतीय राज्य की प्रकृति इसके अक्सर घोषित गरीबपक्षीय वादों को पूरा करने में इसकी असफलता का एक मुख्य कारक रही है।” (ग्रामीण भारत में खाद्य असुरक्षा की स्थिति पर रिपोर्ट, दिसम्बर 2008)

इसने हमें भारत की अर्थव्यवस्था और राजनीतिक व्यवस्था जैसे वृहत्तर सवालों तक ला दिया।

श्रम की आपूर्ति, सस्ता श्रम तथा भारतीय अर्थव्यवस्था

सस्ता और प्रचुर श्रम के जोर पर तिरुपुर के कारखानेदारों ने अपने लिए जगह बनाई है। 1980 के दशक के अंत की ओर निर्यात में तेजी आई और '90 के दशक के भूमंडलीकृत वातावरण में तिरुपुर अपने रंग में आ गया।

भूमंडलीकृत वातावरण में मुकाबला करने के लिए अपने सस्ते श्रम के भण्डार को इस्तेमाल करने की भारत की योजना है। नवउदारवाद के हिमायती तथा योजना आयोग के उपाध्यक्ष मोंटेक सिंह अहलूवालिया ने सस्ते श्रम की बढ़ती कपड़ा और चमड़ा के उत्पादक और निर्यातक के रूप में चीन को हटाकर उसकी जगह लेने की इच्छा जाहिर करते हुए हाल ही में एक बयान दिया है। 21 अप्रैल, 2011 के अखबारों में एक रिपोर्ट आई थी जिसमें उन्होंने कहा था - “चीनी कपड़ा व चमड़ा जैसे मूल्य स्पेक्ट्रम के निचले सिरे को खाली करने जा रहे हैं। इसलिए उनकी जगह कौन लेगा? क्या हमलोग उस जगह को लेने जा रहे हैं या वह वियतनाम या तुर्की या इंडोनेशिया होगा?” और उसने आगे कहा कि भारतीय निर्यात ज्यादा प्रतियोगी होगा क्योंकि चीन निर्यातोन्मुखी विकास की अपनी नीति को समाप्त करने वाला है जिसके फलस्वरूप वहां मजदूरी बढ़ने वाली है। भूमंडलीकृत काम की जगह में यह भारत है जो सस्ता श्रम से लाभ उठा रहा है। तिरुपुर के लिए इसका मायने आत्महत्या की उच्चतर दर हो सकता है लेकिन शासकों के लिए यह कोई निवारक नहीं होगी। भारतीय अर्थव्यवस्था का बड़ा सवाल हमारे सामने खड़ा हो जाता है।

अन्य चीजों के बीच साम्राज्यवादी भूमंडलीकरण का मायने होता है पिछड़े व गरीब देशों के लिए “मूल्य स्पेक्ट्रम के निचले सिरे” का परित्याग। इतना ही नहीं इसका यह भी मायने होता है कि विकसित पूंजीवादी देशों से कम मजदूरी वाले देशों में उद्योगों का स्थानांतरण होगा। इसका मतलब यह है कि साम्राज्यवादी देश ज्यादा परजीवी होंगे। इसलिए “मूल्य स्पेक्ट्रम के निचले सिरे” से अलग ओ०ई०एम० (original equipment manufacturing) व ऑटोमोबाइल निर्माण जैसे

“ऊपरी सिरे” भी ब्राजील, मैक्सिको तथा भारत जैसे पिछड़े देशों में स्थानांतरित होंगे। सं०रा०अमेरिका का डेट्रोआइट अब मोटर निर्माण का प्रतीक नहीं रहा जैसा यह था। अतः हम पाते हैं कि मनेसर और तिरुपुर जैसे शहर आज तेज विकास और मजदूर वर्गीय अशांति में आगे रहने के लिए सुखियों में रहे। गुडगांव का मनेसर अगर अशांत है, मजदूर हर वक्त रोष में हैं तो आत्महत्याओं के साथ तिरुपुर का मजदूर वर्ग भूमंडलीकरण के बीभत्स चेहरे को सामने लाता है। 8-9 प्रतिशत प्रतिवर्ष के तेज विकास दर के पीछे जो कुछ है वह है मजदूरों का बलिदान। संगठित क्षेत्र में भी हमें यह देखने को मिलता है कि अधिकांश नौकरियां अनौपचारिक क्षेत्र में पैदा हुई हैं यानी वे असुरक्षित व कम तनखाह वाली हैं। असंगठित क्षेत्र के उद्यमों से संबंधित राष्ट्रीय आयोग ने अपनी रिपोर्ट में यह कहा है -

“अनौपचारिक मजदूरों की यह दुनिया अब सम्पूर्ण कार्यबल का 92 प्रतिशत हो गई है। हमने कार्यबल के इस हिस्से और 20 रु० तक प्रति व्यक्ति प्रतिदिन की खपत (2004-2005 में) करने वाली 77 प्रतिशत की आबादी जिसे हमने “गरीब और असुरक्षित” कहा है के बीच के, एक प्रयोगाश्रित माप पर आधारित, भारी सामंजस्य को भी प्रकाश में लाया है। इस समूह के लोगों की संख्या 1999-2000 के 81 करोड़ 10 लाख से बढ़कर 2004-05 में 83 करोड़ 60 लाख हो गई है। रोजगार के क्षेत्र में 1993-94 से 1999-2000 के दौरान निम्न दर की वृद्धि ने 1999-2000 से 2004-05 के दौरान रोजगार की उच्चतर वृद्धि दर को जगह दी है। लेकिन इस अवधि के दौरान जो अतिरिक्त रोजगार सृजित हुए हैं वे पूर्णतया अनौपचारिक हैं चाहे वे असंगठित क्षेत्र में हों या संगठित क्षेत्र में।”

यह गरीबी और रोजगार का सरकारी आयोग द्वारा पेश कठोर चित्र है। तथापि हम पाते हैं कि सरकार की नीति लचीले श्रम कानूनों और सस्ती श्रम लागतों द्वारा सहायता प्राप्त अनौपचारिकीकरण को बढ़ावा देने की है। इसे विभिन्न सरकारी रिपोर्टों से एकत्र किया जा सकता है और वास्तविकता इसके अनुरूप है। चाहे वह ऑटोमोबाइल और ऑटो ओरिजनल इक्यूपमेंट जैसे मालों के विकास का ‘नया’ क्षेत्र हो या तिरुपुर जैसा पुराना क्षेत्र जो आज समृद्ध नजर आता है, सभी को सस्ते श्रम व श्रम कानूनों की लगभग अनुपस्थिति से लाभ मिला है।

भारतीय अर्थव्यवस्था सस्ते श्रम के विक्रेताओं को बड़े पैमाने पर पैदा करने का काम करता है। उदाहरण के लिए, यह अनुमान लगाया गया है कि 1991 तथा 2001 के बीच 3 करोड़ 30 लाख किसानों ने अपनी जमीन गंवाई है तथा वे भूमिहीनों और प्रवासी मजदूरों की श्रेणी में शामिल हुए हैं (वैकल्पिक आर्थिक सर्वेक्षण, 2005-06, पृ० 46)। भारत के गांवों की बहुसंख्या के लिए आज उजरती मजदूरी ही आय का मुख्य स्रोत रह गई है। सस्ते प्रवासी मजदूर की भरपूर उपलब्धता के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था ने 21वीं सदी में प्रवेश किया है। इस अर्थव्यवस्था में चल रहा यह सम्पत्तिहरण है जो नवउदारवाद के सूत्रों यानी सस्ता श्रम, ठेका मजदूर तथा लचीला श्रम कानून को सहजता से काम करने की इजाजत देता है। बड़े कामों

के लिए मजदूरों को बुलाया जा सकता है और काम हो जाने के तुरंत बाद उसे बर्खास्त कर दिया जा सकता है - कामनवेलथ गेम्स की अधिसंरचना के निर्माण का काम पूरा होने की तुरंत बाद दिल्ली से मजदूरों के निष्कासन को हमने देखा है। यह सम्पत्तिहरण और पीस देने वाली गरीबी की, असहायता की तथा पूरे भारत में हो रहे मूक विस्थापन की कहानी है जो हमारे सामूहिक अन्तःकरण को उत्तेजित करती प्रतीत नहीं होती है जैसाकि सेज का जबरन विस्थापन करता है। यह स्वाभाविक प्रतीत होता है क्योंकि ये जोर-जबर्दस्ती की परिस्थितियां नहीं बल्कि परिस्थितियों की जोर-जबर्दस्ती (का दबाव) है जिसने इसे पैदा किया है। भारतीय राज्य के बर्बर पंजों की पैदावार नहीं बल्कि एडम स्मिथ के 'अदृश्य हाथों' की उपज है यह विस्थापन। अर्थशास्त्र की गूढ़ पाठ्य पुस्तकों के नुकसानदेह न जान पड़ने वाले धकेलाव (push) व खिंचाव (pull) कारकों में इस परिघटना की घनघोरता व्याख्यायित होती है। जब कोई तिरुपुर घटित होता है केवल तभी हम पूंजीवादी सम्पत्तिहरण पर नजर डालने को विवश होते हैं।

यह पूंजीवाद की स्वतःस्फूर्त प्रक्रियाओं के द्वारा हासिल होता है और जैसाकि विभिन्न अध्ययनों ने उल्लेख किया है नवउदारवादी नीतियों के द्वारा इसे अच्छी तरह मदद मिलती है। निस्संदेह ऐसा कहते हुए हमें सतर्क रहना चाहिए क्योंकि अर्थशास्त्रियों की एक पूरी जमात है जो केवल नवउदारवादी नीतियों के खिलाफ आग उगलती है। हमें यह याद रखना चाहिए कि नवउदारवादी पूंजीवाद पूंजीवाद है और पिछली सदी के 90 के दशक में नवउदारवादी नीतियों के प्रचलन में आने के पहले भी भारतीय अर्थव्यवस्था गरीबी से आक्रांत रही है।

बलात् सम्पत्तिहरण को नाकाम करने में प्रतिरोध संघर्ष सफल रहा है जैसाकि नंदीग्राम में। मेहनतकश जनता के जमीन से सम्पत्तिहरण, उनके घरबार से विस्थापन को नाकाम करने में सफलता हासिल करने का मतलब होगा आदम स्मिथ के अदृश्य हाथों को नाकाम करना। वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था, जिसकी स्वतःस्फूर्त प्रक्रियायें ऐसा करती हैं, को उखाड़ कर ही इसे हासिल किया जा सकता है। आर्थिक प्रक्रियाओं के पूरे आयाम पर सोचने को विवश कर तिरुपुर की आत्महत्या इस बात को स्पष्ट कर देती है। आज खास खेमों, मुख्य रूप से गैर सरकारी संगठनों, पूंजीपतियों तथा सरकार के द्वारा पार्टनरशिप बनाकर तथा मजदूर वर्ग को भी - साझेदार होने के नाम पर - उसमें समामेलित कर मामले को सुधारने का प्रयास हो रहा है। (आत्महत्या की रिपोर्ट के बाद तिरुपुर स्टेकहोल्डर फोरम बनाया गया है।) बलात् श्रम के विरोध के नाम पर उजरती गुलामी व पूंजीवाद को संवारने का प्रयास हो रहा है। मजदूर वर्ग इस अर्थव्यवस्था का साझेदार नहीं है और समाज के उस छोर पर अपने को पाता है जहां उसे हर अन्याय को भोगना पड़ता है। इसलिए कारखानेदारों को जहां तिरुपुर के 11,500 करोड़ रु० के निर्यात हब होने पर गर्व है वहीं मजदूर कठिन परिश्रम करते हैं और हताशा में आत्महत्या करते हैं।

पूरे देश के साथ भी कुछ ऐसा ही है - जहां इस देश के 77 प्रतिशत नागरिक रोजाना 20 रु० से कम पर गुजारा करते हैं वहीं भारत की प्रति व्यक्ति आय 54,527 रु० है (2010-2011 में, वर्तमान

दाम पर)। आज भारत में 55 डालर अरबपति हैं। ऐसे धन के बीच भयंकर गरीबी है। जैसाकि ऊपर की रिपोर्ट में स्वीकार किया गया है वर्तमान राज्य का चरित्र इसके तथाकथित गरीबपक्षीयवादों को पूरा करना लगभग असंभव बनाता है। मजदूर वर्ग ऐसे राज्य के अन्तर्गत साझेदार कैसे हो सकता है? देश के उच्च न्यायालयों की घोषणाओं का भी कोई मतलब नहीं होता। ऐसे राज्य में हम क्या आशा कर सकते हैं? पूरी परिस्थिति पूंजी के शासन के खिलाफ मजदूर वर्ग के वर्ग संघर्ष से पैदा समाज के क्रांतिकारी पुनर्निर्माण की मांग करती है।

¹ कृषि क्षेत्र में तकरीबन पूरी तरह असंगठित मजदूर ही होते हैं जो मुख्यतया स्वनियोजित (65 प्रतिशत) और अस्थायी मजदूर (35 प्रतिशत) होते हैं। कमीशन (NCEUS) के शब्दों में -- "---- अखिल भारतीय स्तर पर, 80 प्रतिशत से ज्यादा किसान सीमांत व छोटे आकार के जोत समूहों वाले हैं जो 2 हेक्टेयर से कम जमीन के मालिक हैं या उसे प्रचालित करते हैं। समूचे में सीमांत व छोटे किसानों के प्रतिशत में और उनके द्वारा प्रचालित जमीन में भी समय के साथ नियमित रूप से इजाफा हुआ है। सीमांत किसानों का प्रतिशत 1953-54 के करीब 38 प्रतिशत से बढ़कर 2002-03 में लगभग 70 प्रतिशत हो गया है।"(एन०एस०एस०, 2003 के सर्वेक्षण के अनुसार बिहार में छोटे व सीमांत किसानों की आबादी कुल किसान समुदाय का करीब 96.5 प्रतिशत है!) "किसान सर्वेक्षण के मुताबिक सीमांत किसान परिवारों (एक हेक्टेयर से कम वाले) में मजदूरी से 54 प्रतिशत आय होती है और केवल 26 प्रतिशत किसानों से होती है। इस श्रेणी के किसानों के लिए पशुपालन से होने वाली आय का हिस्सा भी सबसे ज्यादा है (5.5 प्रतिशत)। छोटे किसानों में 56 प्रतिशत आय खेती से होती है जबकि 30 प्रतिशत मजदूरी से।" यानी हम इन आंकड़ों पर विचार करें तो पाएंगे कि रोजगार के मुख्य क्षेत्र कृषि में 35 प्रतिशत कार्यबल उजरती मजदूरों का है। इसके अलावा बाकी 65 प्रतिशत 'स्वरोजगार' वाली किसान आबादी में से सीमांत किसानों की संख्या 70 प्रतिशत के करीब है और इनकी आय कामुख्य स्रोत (54 %) उजरती मजदूरी ही है। इसके अलावा छोटे किसानों की आय का भी एक अच्छा खासा भाग उजरती मजदूरी से आता है।

(हम विशेष रूप से कोयम्बतूर के अपने युवा दोस्त एस० बालाचन्द्रन को धन्यवाद देना चाहते हैं जिन्होंने हमारे तमिल द्विभाषीय का काम कर हमारी मदद की)